IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मध्यकालीन भारत की स्वदेशी संचार परम्पराएँ: स्वरूप, चुनौती और समकालीन अर्थ

[1] राहुल कुमार सतुना ,[2]प्रो. (डॉ.) सुखनंदन सिंह

[1] शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, [2] संकायाध्यक्ष, संचार संकाय,

[1] देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

शोध सारांश:

यह शोधपत्र मध्यकालीन भारत (**8**वीं से **18**वीं शताब्दी) की स्वदेशी संचार परम्पराओं का विवेचन करता है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के अनेक पहलुओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। मौखिक कथाएँ, लोक गीत, नाट्य प्रदर्शनों, दृश्य सज्जा, प्रतीकात्मक संकेत एवं पाण्डुलिपि संरक्षण जैसी विविध संचार पद्धतियों का अध्ययन करते हुए, यह शोध उनकी लोकतांत्रिक प्रकृति, सामाजिक संवाद में संलग्नता और सांस्कृतिक पहचान के प्रवाह को उजागर करता है। उपनिवेशकालीन प्रभावों से उत्पन्न चुनौतियों के बीच इन परम्पराओं के अनुकूलन और संरक्षण की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन वर्तमान समाज में मध्यकालीन स्वदेशी संचार प्रणालियों की प्रासंगिकता और उनके संरक्षण का महत्त्व दर्शाता है, जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक संवाद की नब्ज़ को समझने के लिए आवश्यक है।

कूट शब्द - मध्यकालीन भारत, स्वदेशी संचार, मौखिक परंपराएँ, प्रदर्शनात्मक संचार, प्रतीकात्मक संचार, लोक संस्कृति

परिचय

भारतीय इतिहास में मध्यकाल (लगभग 8वीं-18वीं शताब्दी) बहुत से जटिल एवं जीवंत परिवर्तनों का साक्षी बना। यह भी एक सर्वविदित तथ्य है, की यह काल अर्थात मध्यकाल भारतीय समाज एवं संस्कृति के लिए एक संक्रमण काल की तरह देखा जाता है जिसमे बाह्य आक्रमणों एवं दबावों की प्रमुखता रही है। जिसके फलस्वरूप भारतीय उपमहाद्विपीय सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजैतिक परिस्थितियाँ में अपेक्षाकृत सकरात्मका एवं नकारात्मक दोनों ही तरह के बदलाव भी हुए। संचार की दृष्टि से यह दबाव अथवा परिवर्तन और भी अप्रत्याशित एवं जटिलताओं से युक्त रहे हैं।

मध्यकालीन भारत में संचार मौखिक, दृश्य एवं प्रतीकात्मक रूपों में प्रतिपादित होत था, जो दैनंदिन जीवन के प्रत्येक पक्ष में अंतर्निहत था। स्वदेशी संचार प्रणालियों ने मध्यकाल में पीढ़ियों के मध्य धार्मिक जीवन मूल्यों, सामाजिक मानदंडों, ऐतिहासिक कथाओं और राजनीतिक संदेशों को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कहानियों को मौखिक रूप से सुनाना, लोक कलाओं का प्रदर्शन, मंदिरों की वास्तुकला एवं शिलालेख, भक्तिपरक गीत और एवं सामदायिक आयोजनों ये सभी मध्यकालीन भारत की स्वदेशी संचार परम्परा के अभिन्न अंग थे।

विभिन्न स्थानीय एवं क्षेत्रीय लोक कलाएँ जैसे पंडवानी, हरिकथा एवं मध्यकाल के भलती एवं सूफी आन्दोलन, लोक संगीत, नाट्यकला, स्थानीय भाषा में कविता और गीत आदि इन सभी ने मिलकर संचार को लोकतान्त्रिक बनाने के साथ-साथ सामाजिक असमानता के लिए भी एक चुनौती के रूप में प्रकट हुए। इसके अतिरिक्त अन्य प्रतीकात्मक संचार माध्यम जैसे, वास्तुकला, लोक पर्व एवं त्यौहार आदि भी सशक्त गैर-मौखिक संचार के प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करते थे, जिनसे की सामूहिक पहचान एवं विश्वास प्रणालियों को बल मिलता था।

मध्यकालीन स्वदेशी संचार प्रणालियों को समझने पर भारत के विविधतापूर्ण अतीत की झलक देखने को मिलती है साथ ही इसके सामाजिक सांस्कृतिक समृद्ध ताने-बाने की जटिलताओं अनुभव भी होत है। मध्यकालीन भारत की स्वदेशी संचार परम्पराओं को निम्नलिखित बिन्दुओ के अंतर्गत विस्तार से समझ जा सकता है।

उद्देश्य

1. मध्यकालीन भारत की प्रमुख स्वदेशी संचार परम्पराओं का मौखिक, दृश्य, प्रदर्शनात्मक, और प्रतीकात्मक रूपों में विश्लेषण करना एवं इनके सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में प्रभाव एवं भूमिका को समझना।
2. उपनिवेशकालीन प्रभावों के संदर्भ में इन पारंपरिक संचार प्रणालियों की संरक्षा, परिवर्तन और समकालीन भारतीय समाज में इनके पुनर्प्रासंगिकता के पहलुओं का मूल्यांकन करना।

साहित्य समीक्षा

वर्तमान शोध में संचार अध्ययन के क्षेत्र में गैर-पश्चिमी दृष्टिकोणों के समावेश व विस्तार की आवश्यकता पर विस्तार से विचार किया गया है। Gluck (2018)[1] ने मीडिया अध्ययन को पश्चिमी प्रभुत्व से मुक्त कर गैर-पश्चिमी साक्ष्यों, रूपरेखाओं और पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया है। शोधकर्ता एक लचीले, समावेशी और बहुआयामी दृष्टिकोण की वकालत करते हैं, जो विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में संचार के अध्ययन को विस्तृत तथा प्रासंगिक बनाए। उनके अनुसार केवल पश्चिमी मापदंड संचार को पर्याप्त रूप से परिभाषित नहीं कर पाते, अतः अन्तरसांस्कृतिक संवाद और स्वदेशी तत्वों का समावेश आवश्यक है।

भारतीय संदर्भ में डिजिटल क्रांति और हाशिये पर रहने वाले समुदायों के बीच संचार चुनौतियों का आत्मसात करते हुए, मल्होत्रा, शर्मा, श्रीनिवासन एवं मैथ्यू (2018)[2] ने सामाजिक व्यवहार परिवर्तन संबंधी संचार प्रयासों में स्वदेशी संचार के महत्व को उजागर किया है। उनका अध्ययन दिखाता है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी के साथ स्थानीय एवं सांस्कृतिक संदर्भों की संगति ही प्रभावी संचार रणनीतियों की कुंजी है। वे मोबाइल-आधारित हस्तक्षेपों और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करने वाली रणनीतियों को स्वीकार्य और आवश्यक ठहराते हैं, साथ ही स्थानीय संवाददाताओं की भूमिका को सुदृढ़ करने पर बल देते हैं।

लैटिन अमेरिका एवं अब्या याला क्षेत्र में किए गए अध्ययन में स्वदेशी संचार की सामाजिक भागीदारी एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दर्शाया गया है। वह मानते हैं कि उपनिवेशवाद से जूझते स्थानीय समाजों के संरक्षण एवं पुनरुत्थान में स्वदेशी मीडिया और संचार प्रणालियों की भूमिका मौलिक है। इनके माध्यम से नवउदारवादी प्रभावों को सीमा करने और बहुरूपीय लोकतंत्र के विकास को प्रोत्साहन देने की संभावना प्रबल होती है।

इथियोपिया के हरमाया जिले में ओरोमो समाज की स्वदेशी संचार प्रणालियों की खोज और विश्लेषण करते हुए Andualem (2020)[3] ने बताया कि विविध मौखिक, सांकेतिक, एवं प्रदर्शनात्मक संचार रूप समुदायिक शिक्षण,

[1] Glück, A. (2018). De-Westernization and decolonization in media studies.

[2] Malhotra, A., Sharma, R., Srinivasan, R., & Mathew, N. (2018). Widening the arc of indigenous communication: Examining potential for use of ICT in strengthening social and behavior change communication efforts with marginalized communities in India. The Electronic Journal of Information Systems in Developing Countries, 84(4), e12032.

[3] Andualem, D. S. (2020). Indigenous communication system of the Oromo society: The case of the Oromo community of Haramaya district. East African Journal of Social Sciences and Humanities, 5(1), 37–54.

सांस्कृतिक संरक्षण, और आर्थिक जानकारी के प्रसार के मूल आधार हैं। वे सामाजिक एकता बनाए रखने और बाहरी प्रौद्योगिकी के प्रभावों का प्रतिकार करने में इन प्रणालियों की महत्ता पर बल देते हैं।

भारत के उत्तराखंड राज्य में चिपको पर्यावरण संरक्षण आंदोलन को केंद्र में रखते हुए, Mishra (2021)[4] ने इस आंदोलन की संचार रणनीतियों का विश्लेषण किया। शोध से ज्ञात होता है कि इस आंदोलन की सफलता में स्वदेशी संचार पद्धतियों, जैसे अहिंसात्मक विरोध, सांस्कृतिक विमर्श, और सामाजिक संगठन की भूमिका निर्णायक रही। उन्होंने स्थानीय संचार संरचनाओं और पारंपरिक ज्ञान के प्रभाव को सामाजिक परिवर्तन की कसौटी बताया है।

मीडिया एवं संचार अध्ययन के औपनिवेशीकरण पर विचार करते हुए, Magallanes-Blanco (2022)[5] ने औपनिवेशिक दृष्टिकोण के प्रभावों को चुनौती देते हुए गैर-औपनिवेशी, स्वतंत्र पहचान स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। उनका तर्क है कि उपनिवेशवादी मान्यताएँ न केवल ज्ञान उत्पादन बल्कि समाजीय सोच को भी प्रभावित करती हैं और इसलिए संचार अध्ययन में विविधता एवं स्वाधीनता को बढ़ावा देना चाहिए।

Greenwood (2023)[6] के अध्ययन में ऑस्ट्रेलिया के स्वदेशी एवं पश्चिमी संस्कृतियों के बीच संवाद स्थापित करने हेतु 'जादुई चेतना' की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। उन्होंने धारणा व्यक्त की है कि पौराणिक कथाएँ दोनों संस्कृतियों के लिए साझा धरातल उपलब्ध कराती हैं, जो सांस्कृतिक भेदों के पार पारस्परिक समझ और समावेशन को संभव बनाती हैं।

यह साहित्य समीक्षा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि संचार अध्ययन का भविष्य गैर-पश्चिमी, स्वदेशी दृष्टिकोणों के व्यापक समावेश में निहित है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और तकनीकी विविधताओं को समेटे हुए है। डिजिटल युग में विशेषकर भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी संदर्भ में यह बहुआयामी दृष्टिकोण शोध एवं नीति निर्माण दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

शोध क्रियाविधि:

- **शोध प्रकार:** वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक
- **अनुसंधान पद्धति:** गुणात्मक और ऐतिहासिक विश्लेषण
- **स्रोत एवं नमूना:** मध्यकालीन भारत के ऐतिहासिक ग्रंथ, मंदिर अभिलेख, लोक कथाएँ, भित्ति चित्र, पांडुलिपियाँ, और लोकनाट्य प्रदर्शन के प्रामाणिक साक्ष्य
- **डेटा संग्रह उपकरण:** दस्तावेज विश्लेषण, संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन, मौखिक परंपराओं का संकलन एवं साहित्य समीक्षा
- **विश्लेषण विधि:** विषयगत विश्लेषण (Thematic Analysis), तुलनात्मक अध्ययन, प्रतीकात्मक व्याख्या एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श

1. मौखिक परम्पराएँ- मौखिक परंपराएँ –

मध्यकालीन भारत में मौखिक परंपराएँ संचार के सवसे प्रचलित परंपरा थी, दैनंदिन संचार में इसका सर्वधिक प्रयोग किया जाता था । इस परंपरा के माध्यम से ही धार्मिक, नैतिक ज्ञान एवं सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को जनमानस आपस में साझा करते थे। इसमें कहानी, लोकगीत एवं स्थानीय जीवन परम्पराओं का वर्णन विस्तार रूप से था।

[4] Mishra, R. (2021). Role of indigenous communication strategies in the success of Chipko environment conservation movement. International Journal of Ecology and Environmental Sciences, 47(3), 219–226.

[5] Magallanes-Blanco, C. (2022). Media and communication studies: What is there to decolonize? Communication Theory, 32(2), 267–272.

[6] Greenwood, S. (2023). Building bridges of communication: Seeking conversation between indigenous and western cultures through magical consciousness. Journal of Consciousness Studies, 30(5-6), 218–231.

1.1 कथाएँ एवं लोकगीत - मौखिक संचार में कहानी सुनाना मध्यकालीन भारत में स्वदेशी संचार का सर्वाधिक प्रचलित रूप था। इसमें कथा परंपरा (कथात्मक कहानी सुनाना), जातक कथाएँ और पौराणिक महत्त्व के पाठ अध्यात्मिक एवं नैतिक दोनों ही प्रकार के शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करते थे।

राजस्थान में भाट चारणों की परंपराओं के द्वारा वीर गाथाओं एवं राजवंशो की वंशावलियों को संरक्षित करने में सहायता मिली (Gupta, 2007) [7]। मध्यकालीन दक्षिण भारत में संगीत एवं संगीत में आबद्ध संवाद के द्वारा हरिकथा और विल्लु पातु की भक्ति कथाएँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण है (Subramanian, 2009)[8]।

1.2 लोकोक्तियाँ एवं मौखिक ज्ञानमीमांसा

संचार की मौखिक परम्पराओं में लोकोक्तियाँ भी दैनंदिन जीवन में संचार के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करती थीं, जिनके माध्यम से जटिल को आसानी से याद रखने योग्य वाक्यांशों में समाहित कर दिया जाता था (Wilsone, Mieder & Dundes, 1981) [9]।

2. प्रदर्शनात्मक संचार परम्पराएँ –

मध्यकालीन भारत में, प्रदर्शनात्मक संचार परम्पराएँ संस्कृति, जीवन मूल्यों एवं धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाओं को प्रसारित करने का एक जीवंत माध्यम था। लोक रंगमंच, अनुष्ठानिक आयोजनों एवं सार्वजनिक उत्सवों में समुदाय को कहानी सुनाना, कलात्मक प्रदर्शन करना और संगीत के द्वारा कथाएँ प्रस्तुत करना आदि ऐसे माध्यम थे, जिनसे लोकरंजन करते हुए लोकशिक्षण के उद्देश्य को पूरा करना भी सम्मिलित था।

2.1 लोक रंगमंच और मौखिक परंपराएँ

यह मध्यकालीन स्वदेशी संचार की मत्वपूर्ण परम्पराओं में से एक थी, इसमें सन्देश देने के लिए संगीत संवाद नृत्य एवं प्रतीकवाद को समायोजित करके प्रदर्शित किया जाता था

कर्नाटक में यक्षगान, केरल में कथकली, तमिलनाडु में थेरुकुथु और उत्तर भारत में नौटंकी ने सार्वजनिक शिक्षा के गतिशील मंचों के रूप में काम किया। इन प्रदर्शनों में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के दृष्टान्तों के अतिरिक्त स्थानीय बोलियों, किंवदंतियों का लोककथाओं का संदर्भ प्रस्तुत किया जाता था (Richmond, 1990)[10] ।

2.2 अनुष्ठान रंगमंच और धार्मिक आयोजन

इन प्रदर्शनों में अनुष्ठान, संस्कार एवं अनुष्ठान की वैदिक परम्पराएँ में गहराई से निहित थीं तथा यह संचार के सामुदायिक अनुष्ठानों के आयोजित किए जाते थे। रामलीला और कृष्णलीला जैसे प्रदर्शनों में पवित्र ग्रंथों के प्रसंगों का नाटकीय रूप से प्रदर्शन किया जाता था, जो कई दिनों तक चलते थे साथ ही इसमें पूरे गांव के गाँव शामिल होते थे।

नवरात्रि, स्थानीय मेले, कुंभ मेला और महाशिवरात्रि आदि अवसरों पर नाट्यकला, शोभायात्राओं में, प्रतीकात्मक पोशाक और संगीत को एकीकृत किया जाता था, जिससे मनमोहक अनुभव उत्पन्न कर देखने वाला स्वयं को प्रदर्शन का हिस्सा समझे।

2.3 शिक्षाप्रद और नैतिक संदेश

मध्यकालीनस्वदेशी संचार की ये प्रदर्शनकारी परंपराएँ धार्मिक, सामाजिक, नैतिक शैक्षणिक का समन्वय थीं । धर्म-कर्म, समुदाय के जीवन मूल्यों जैसे बड़ों के प्रति सम्मान, ईमानदारी और अहिंसा आदि इसके इसके विषयों में सम्मिलित थे।

[7] Gupta, S. (2007). Cultural Performances in Medieval Rajasthan. Manohar.
[8] Subramanian, L. (2009). From the Tanjore Court to the Madras Music Academy. Oxford University Press
[9] Wilson, F. P., Mieder, W., & Dundes, A. (1981). The Wisdom of Many: Essays on the Proverb
[10] Richmond, F. P. (1990). Characteristics of the modern theatre. Indian theatre: Traditions of performance, 387-462.

3. दृश्य संचार परंपराएँ-

मध्यकालीन भारत में मंदिरों, शिलालेख आदि दृश्य संचार के प्रमुख साधन के रूप में कार्य करते थे। मध्यकाल में दृश्य वास्तुकला, मूर्तिकला, प्रतिमा विज्ञान और चित्रकला आदि के माध्यम से व्यक्त किया गया था। मंदिरों, मस्जिदों एवं किलों एवं भवन निर्माण कला में नक्काशी और प्रतीकात्मक संकेत परिचयात्मक एवं सांकेतिक रूप से अध्यात्मिक शक्ति, भक्ति एवं परिचय के संदेश देते थे। यह दृश्य संचार गैर-मौखिक रूप में कहानी कहने तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संचार के लिए प्रभावी एवं असरकारक उपकरण थे।

3.1 मंदिर वास्तुकला और प्रतीक चिन्ह

मंदिर प्रमुख रूप से दृश्य संचार केंद्र थे, जिनसे अध्यात्मिक प्रतीकों, धर्म दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्था को अभिव्यक्त किया जाता था। चोल, होयसला और विजयनगर साम्रज्य के मंदिरों में प्रतीक चिन्ह, मूर्तिकला एवं भित्ति चित्रों में महाकाव्यों एवं उनकी शिक्षाओं का वर्णन है। इसके साथ ही मंडल संरचनाओं (विशेष ज्यामितीय आकृतियाँ अथवा विन्यास एवं प्रतीक चिन्ह), देवता की भाव भंगिमाएँ एवं मूर्तिकला की मुद्राएँ सभी में गहरे एवं कूट अर्थ निहित थे (Kramrish, 1976)[11]।

3.2 भित्ति चित्र और शिलालेख

अजंता, एलोरा और लेपाक्षी के भित्ति चित्र न केवल अलंकारिक है यह भी दृश्य संचार का कार्य करते थे। तांबे की प्लेटों और मंदिर की दीवारों पर शिलालेख राजकीय आदेशों एवं वंशावली को व्यक्त करते थे।

4. पाण्डुलिपि परम्पराएँ

मध्यकालीन भारत में साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं धार्मिक ज्ञान के संरक्षण, प्रसारण एवं हस्तांतरण में पांडुलिपि परंपरा ने अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह पांडुलिपियां ताड़ के पत्तों, बर्च की छाल पर लिख कर तैयार की जाती थीं, इन्हें चित्रों के द्वारा सजाया भी जाता था। कालांतर में कागज का अविष्कार होने पर इन्हें सावधानीपूर्वक कागज पर हस्तलिखित किया जाने लगा। मंदिरों, मदरसों तथा राजदरबारों ने पांडुलिपियों के उत्पादन करने, प्रतिलिपि बनाने एवं संरक्षण के लिए स्क्रिप्टोरियम(पाण्डुलिपि निर्माण कक्ष) आदि की सुविधा प्रदान की।

4.1 ताड़ के पत्ते और बर्च की छाल की पांडुलिपियाँ

यह पाण्डुलिपि का सर्वाधिक प्राचीन रूप है। इनके माध्यम से प्रारम्भिक रूप में संस्कृतियों द्वारा ज्ञान संचरण को सुगम बनाया गया। शारदा, मोदी, ग्रंथ और कैथी जैसी स्वदेशी लिपियों के द्वारा क्षेत्रीय प्रसार को समर्थन मिला। इसके आलावा विभिन्न विषयों जैसे आयुर्वेद, खगोल विज्ञान, संगीत और शासन पर पांडुलिपियों ने एक विकेन्द्रीकृत संचार प्रणाली बनाई (Pollack, 2001)[12] ।

4.2 सचित्र पांडुलिपियाँ

इन पांडुलिपियों में चित्रों को भी स्थान मिला है, जैसे जैन पांडुलिपियों (कल्पसूत्र, पंचतंत्र) में शैक्षणिक और स्मृति संबंधी कार्यों के लिए दृश्यों का उपयोग किया गया और राजपूत और मुगल दरबारों में लघु चित्रों द्वारा मौखिक और दृश्य कहानीयों का संयोजन है।

5. प्रतीक, संकेत एवं गैर मौखिक संचार

मध्यकालीन भारत में, प्रतीक, चिह्न और गैर-मौखिक संचार के लिए एक दृढ़ साधन के रूप में प्रयोग हुए है । मध्यकालीन भारतीय समाज एवं राजनैतिक जीवन में प्रतीक, संकेत गैर मौखिक संचार के महत्वपूर्ण प्रतिनिधी के रूप में गहराई के साथ स्थापित हैं। ये प्रतीक, मुद्राएँ, तिलक, संकेत एवं झंडे आदि मौन परिचय देते हुए अधिकार एवं आध्यात्मिक अर्थो को व्यक्त करते थे। वास्तुकला के विभिन्न रूपों , प्रतिमाओं एवं प्रतीक चिन्हों ने भी मूल्यों और विश्वासों को दर्शाते हुए संचार उद्देश्यों की पूर्ति की।

[11] Kramrisch, S. (1976). The hindu temple (Vol. 1). Motilal Banarsidass Publiction

[12] Pollock, S. (2001). The Death of Sanskrit. Comparative Studies in Society and History, 43(2), 392–426.

5.1 पवित्र प्रतीक

सनातन ग्रंथों में पवित्र प्रतीक चिन्ह जैसे स्वस्तिक, कमल और चक्र जैसे प्रतीकों का धार्मिक संदर्भों में गहन संचारिक अर्थ था। यह सांस्कृतिक पहचान और ब्रह्मांड संबंधी मान्यताओं के प्रतीक के रूप में भी काम करते थे।

5.2 पोशाक और अलंकरण

सभ्यतागत दृष्टिकोण से पगड़ी, तिलक, आभूषण एवं वस्त्र आदि जाति, समुदाय और क्षेत्रीय संबद्धता को अभिव्यक्त करते थे। इस प्रकार वस्त्र स्थिति और विश्वास की मूक भाषा के रूप में कार्य करते थे।

6. संगीत और काव्य परंपराएँ

मध्यकालीन भारत में संगीत एवं काव्य की विशाल एवं समृद्ध परंपराएँ है, जिनकेअंतर्गत मध्यकालीन भारत में भक्ति एवं सूफी आन्दोलन के द्वारा आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संचार के क्षेत्र महत्वपूर्ण आयाम स्थापित किए गए। जहाँ एक ओर भक्ति एवं सूफी आंदोलनों ने जाति एवं वर्ग की सीमाओं को मिटाते हुए क्षेत्रीय भाषाओं में जनमानस से जुड़ने के लिए भक्ति, कविता और संगीत का प्रयोग किया। इनमे सरल गीतात्मक रूप में गहन दार्शिनिक तत्वों की विवेचना की गई, जो सहजता से जनमानस को स्थानीय भाषाओँ में आसानी से समझाए गए ।

6.1 भक्ति और सूफी आंदोलन

नानक, कबीर, मीराबाई और बसवन्ना जैसे संतों ने आध्यात्मिक संदेश एवं सामाजिक आलोचना को संप्रेषित करने के लिए पद्यात्मक शैली एवं गीत का प्रयोग किया। ये मौखिक-काव्यात्मक रूप जाति और वर्ग से परे थे, जन संचार के लिए स्थानीय बोलियों का उपयोग करते थे।

6.2 सामुदायिक गायन और सस्वर पाठ

भजन, कव्वाली और कीर्तन केवल धार्मिक ही नहीं बल्कि असहमति या एकता की सामाजिक-राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ थीं।

7. स्वदेशी मीडिया और संदेश प्रणालियाँ

मध्यकालीन भारिय्त परिवेश में स्वदेशी मीडिया और सन्देश के आदान प्रदान की प्रणालियाँ सथानीय संचार की आधार थीं। यह तत्कालीन दबाओं राजशाही परम्पराओं से मुक्त होकर कार्य करती थीं। इनके द्वार समुदायों में सूचनाओ का तीव्र प्रवाह भी सुनिश्चित हुआ और सामूहिक निर्णय तथा सांस्कृतिक पहचान को संरक्षण तथा बल मिला।

7.1 संदेशवाहक और प्रतीकात्मक वाहक

तत्कालीन संचार प्रणाली में राजसी संचार में दूतों (संदेशवाहकों) का उपयोग, इसके साथ ही प्रतीकात्मक वस्तुओं (जैसे, माला, तलवार) के माध्यम से कोडित संदेश शामिल थे। मध्यकाल में राजसी एवं अन्य संचार के लिए पक्षियों, वाद्य यंत्रो आदि का प्रोग भी किया जात था, कबूतर, ढोल और शंख का उपयोग संचार उपकरणों के रूप में किया जाता था।

7.2 स्थानीय बाज़ार

मध्यकालीन संचार प्रणालियों में साप्ताहिक बाज़ार, ग्राम पंचायतें और कुएँ सामाजिक केंद्रों के रूप में कार्य करते थे जहाँ संदेश, समाचार और गपशप अनौपचारिक रूप से प्रसारित होते थे।

8. स्वदेशी शिक्षा और ज्ञान साझाकरण

मध्यकालीन भारत में स्थानीय परंपराओं शिक्षण एवं शिक्षा का केन्द्रीय आधार थी, जो न केवल औपचारिक शिक्षण पर जोर देतीं थी बल्कि स्थानीय परम्पराओं के मौखिक संचरण, कंठस्थीकरण और जीवंत अनुभव पर भी ज़ोर देती थीं। इस काल में धार्मिक तथा सामुदायिक दोनों ही प्रकार के परिवेश, सामुदायिक अंतःक्रिया क्रिया एवं ज्ञान के आदान-प्रदान के केंद्र बन गए, जिससे लोक परंपराओं की निरंतरता सुनिश्चित हुई। सामूहिक ज्ञान, नैतिकता और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में ये प्रणालियाँ महत्वपूर्ण थीं।

8.1 गुरुकुल, पाठशालाएँ और मदरसे

स्वदेशी शिक्षा मुख्यतः गुरुकुलों (हिंदू विद्यालयों), पाठशालाओं (ग्रामीण विद्यालयों) और मदरसों (इस्लामी संस्थानों) में दी जाती थी। गुरुकुल गुरु-शिष्य परम्परा के मौलिक सिद्धांत पर कार्य करते थे, जिसमें मौखिक पाठ, आध्यात्मिक अनुशासन और नैतिक मूल्यों पर ज़ोर दिया जाता था (Kumar, 1991)[13] । पाठशालाएँ, मुख्य रूप से समुदायों के द्वारा संचालित होती थीं, छात्रों को अंकगणित, ज्योतिष और स्थानीय प्रशासन जैसे व्यावहारिक विषयों में प्रशिक्षित करती थीं।

मदरसों ने भी मध्यकालीन भारत में ज्ञान के प्रसार में अपना योगदान दिया, धर्मशास्त्र, दर्शन, गणित और चिकित्सा पर ध्यान केंद्रित करने के साथ साथ उनका अनुवाद भी किया गया। इसके अतिरिक्त इस्लामी विद्वता को स्थानीय बौद्धिक परंपराओं के साथ मिश्रित भी किया गया।

8.2 संचार में महिलाओं की भूमिका

मध्यकालीन परिस्थितियों में महिलाओं के योगदान को नगण्य सा ही मन गया लेकिन हाशिये पर होने के बावजूद, महिलाओं ने लोकगीतों, घरेलू अनुष्ठानों और वस्त्र कलाओं के माध्यम से संचार में भाग लिया।

9. औपनिवेशिक विघटन और विरासत

भारतीय उपमहाद्वीप में उपनिवेशवाद के आगमन से स्वदेशी संचार परंपराओं सांस्कृतिक, राजनैतिक सामाजिक दबावों के चलते दमन सहना पड़ा साथ ही स्वदेशी संचार की विकास यात्रा ने एक महत्वपूर्ण मोड़ ले लिया। उपनिवेशवाद के फलस्वरूप मुद्रण संस्कृति, अंग्रेजी शिक्षा और नौकरशाही शासन प्रणालियों के आगमन ने सदियों से फल-फूल रहे मौखिक, प्रदर्शनात्मक और प्रतीकात्मक ज्ञान-साझाकरण के विधियों एवं साधनों को पीछे छोड़ दिया। इस बदलाव से अंको स्वदेशी संचार परम्पराएं हाशिए पर आ गई, लेकिन इस विरुद्द प्रवाह में भी वे पूरी तरह से लुप्त नहीं हुईं; बल्कि, नवीन परिस्थतियों में स्वयं को खुद को ढाल कर सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण तरीकों से सांस्कृतिक पहचान को नवीन रूप में गढ़ना जारी रखा।

9.1 मुद्रण और औपनिवेशिक शिक्षा द्वारा विस्थापन

मुद्रित और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में मौखिक परंपराओं, पांडुलिपि संस्कृति और प्रदर्शनात्मक संचार परंपरा बाधित हुई । विदेशी शिक्षा को आधुनिकता का आधार मानने के कारण कहानी सुनाना, लोक रंगमंच और पांडुलिपियों की अध्ययन ने अपनी प्रतिष्ठा खो दी। इसके साथ ही लिखित ज्ञान के प्रति औपनिवेशिक वरीयता ने गुरुकुलों, मदरसों और अन्य स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को हाशिए पर धकेल दिया।

9.2 अनुकूलन के माध्यम से अस्तित्व

अवसान के ढलान पर होने के बावजूद बावजूद, स्वदेशी संचार परंपराओं ने औपनिवेशिक आधुनिकता के साथ अनुकूलन किया। रामलीला प्रतिरोध के एक राष्ट्रवादी प्रदर्शन के रूप में विकसित हुई। लोक रंगमंच और मौखिक कथाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी विषयों को एकीकृत किया गया और यह एक विरोध माध्यम के रूप में उभर कर सामने आया (Guha, 1983)[14] ।

विश्लेषण एवं चर्चा

मध्यकालीन भारत की संचार प्रणालियाँ न केवल अत्यंत जीवंत और स्थानीय थीं, बल्कि ये सामूहिक चेतना और समुदाय की सामाजिक एकता का भी अहम हिस्सा थीं। ये प्रणालियाँ विभिन्न सामाजिक तबकों, जातियों, धर्मों और भाषाई समूहों को जोड़ने का काम करती थीं। साथ ही, ये सामाजिक असमानताओं और पहचान के मुद्दों के साथ एक जटिल संवाद स्थापित करती थीं, जहाँ परंपरागत मूल्य, सांस्कृतिक विश्वास और विरोधाभासी सामाजिक व्यवस्था के बीच सामंजस्य कायम रहता था।

[13] Kumar, K. (2005). Political agenda of education: A study of colonialist and nationalist ideas. Sage.

[14] Guha, R. (1999). Elementary aspects of peasant insurgency in colonial India. Duke University Press.

स्वदेशी संचार प्रणालियों में मौखिक परंपराएँ, लोक कलाएँ, मंदिरों की वास्तुकला, शिलालेख और प्रतीकात्मक अनुष्ठान प्रमुख माध्यम थीं, जो समुदायों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी, त्योहारों, धार्मिक आस्थाओं और राजनैतिक संदेशों को प्रभावी ढंग से प्रसारित करती थीं। ये परंपराएँ सामाजिक पहचान और स्मृति के संरक्षण में सहायक थीं, जिन्होंने विभिन्न सामाजिक समूहों को सांस्कृतिक रूप से एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य किया। इसके अतिरिक्त, संचार का ये प्रकार सामाजिक प्रतिरोध और पुनर्निर्माण के लिए भी एक अहम माध्यम था, जहाँ लोक गीतों, प्रदर्शन कला और कथाओं के जरिये सामाजिक असमानताओं, जातिगत भेदभाव और अन्याय के खिलाफ चेतना का संचार होता था।

लेकिन उपनिवेश काल में शिकायतों व दबावों के चलते अंग्रेजी शिक्षा, मुद्रण माध्यम और नौकरशाही व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने इन स्वदेशी संचार प्रणालियों को हाशिये पर धकेल दिया। मुद्रण तकनीक के आगमन ने लिखित ज्ञान को प्राथमिकता दी, जिससे मौखिक तथा प्रदर्शनात्मक परंपराएं धीरे-धीरे कमज़ोर हो गईं। इसके बावजूद ये प्राचीन संचार प्रणालियाँ पूरी तरह से विलुप्त नहीं हुईं; वे नव परिवर्तित संदर्भों और सामाजिक परिवर्तनों के बीच जीवित रहकर अपनी मौलिक भूमिका निभाती रहीं। आज के सामाजिक-राजनैतिक आंदोलनों, सांस्कृतिक पुनरुत्थान प्रयासों और लोक संवाद में इनके उद्भव रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष

मध्यकालीन भारत की स्वदेशी संचार परम्पराएँ न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से बल्कि वर्तमान समाज के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये प्रणालियाँ भारत की सांस्कृतिक विविधता और जीवंतता का मूलाधार हैं, जो इस उपमहाद्वीप के जनजीवन, भाषा, धर्म, कला और सामाजिक मान्यताओं के अभिन्न अंग रही हैं। इन परम्पराओं का अध्ययन इतिहास, लोकविद्या, भाषाशास्त्र और कला अध्ययन के लिए अत्यंत आवश्यक है, जिससे हमें हमारे अतीत के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों की गहरी समझ मिलती है।

साथ ही, ये परम्पराएँ समकालीन संवाद, शिक्षा एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। वे समुदायों के भीतर सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक एकता एवं ज्ञान के आदान-प्रदान के सूक्ष्म एवं प्रभावी साधन हैं। शोध से स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन स्वदेशी संचार प्रणालियाँ आज भी लोकतांत्रिक और सामुदायिक प्रक्रियाओं में अंतर्निहित हैं तथा ये भारतीय समाज में जागरूकता, सामाजिक सहभागिता और सांस्कृतिक समावेशन के लिए एक सशक्त स्रोत हैं।

इसलिए, इन संचार परम्पराओं के संरक्षण, दस्तावेजीकरण, और शोध को बढ़ावा देना न केवल हमारे सांस्कृतिक विरासत की रक्षा है, बल्कि वे भविष्य के संवाद और सहअस्तित्व के लिए भी आवश्यक हैं। इस संदर्भ में स्वदेशी संचार प्रणालियों का अध्ययन एवं संवर्धन आधुनिक सामाजिक-शैक्षणिक नीतियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए एक प्रेरणादायक आधार प्रस्तुत करता है।

संदर्भ:

1. Yazdani, G. (1930). Ajanta: Monochrome Reproductions of the Ajanta Frescoes Based on Photography. Oxford University Press.
2. Kramrisch, S. (1976). The hindu temple (Vol. 1). Motilal Banarsidass Publication.
3. Dehejia, V. (1978). Looking again at Indian art. Publications Division Ministry of Information & Broadcasting.
4. Wilson, F. P., Mieder, W., & Dundes, A. (1981). The Wisdom of Many: Essays on the Proverb.
5. Varadpande, M. L. (1987). History of Indian Theatre (Vol. 1–3). Abhinav Publications.
6. Richmond, F. P. (1990). Characteristics of the modern theatre. Indian theatre: Traditions of performance, 387-462.
7. Michell, G. (1990). The Penguin guide to the monuments of India/ Buddhist, Jain, Hindu. Penguin.
8. Lutgendorf, P. (1991). The Life of a Text: Performing the Ramcharitmanas of Tulsidas. University of California Press.
9. Freeman, R. (2004). Performing Possession: Ritual and Theatre in South India. In J. H. M. Smith (Ed.), Theatres of Memory: Past and Present in Contemporary Culture (pp. 45–67). Routledge.

10. Thapar, R. (2004). From the Origins to AD 1300. Univ of California Press.
11. Lorenzen, D. N. (2006). Who Invented Hinduism? Essays on Religion in History. Yoda Press.
12. Gupta, S. (2007). Cultural Performances in Medieval Rajasthan.
13. Subramanian, L. (2009). From the Tanjore Court to the Madras Music Academy. Oxford University Press.
14. Malhotra, A., Sharma, R., Srinivasan, R., & Mathew, N. (2018). Widening the arc of indigenous communication: Examining potential for use of ICT in strengthening social and behavior change communication efforts with marginalized communities in India. The Electronic Journal of Information Systems in Developing Countries, 84(4), e12032.
15. Glück, A. (2018). De-Westernization and decolonization in media studies.
16. Lehman, K. (2018). Beyond pluralism and media rights: Indigenous communication for a decolonizing transformation of Latin America and Abya Yala. Latin American Perspectives, 45(3), 171–192.
17. Andualem, D. S. (2020). Indigenous communication system of the Oromo society: The case of the Oromo community of Haramaya district. East African Journal of Social Sciences and Humanities, 5(1), 37–54.
18. Mishra, R. (2021). Role of indigenous communication strategies in the success of Chipko environment conservation movement. International Journal of Ecology and Environmental Sciences, 47(3), 219–226.
19. Magallanes-Blanco, C. (2022). Media and communication studies: What is there to decolonize? Communication Theory, 32(2), 267–272.
20. Greenwood, S. (2023). Building bridges of communication: Seeking conversation between indigenous and western cultures through magical consciousness. Journal of Consciousness Studies, 30(5-6), 218–231.
21. Hansen, K. (2023). Grounds for play: The nautanki theatre of north India. Univ of California Press.